E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2024; 6(1): 71-78
Received: 02-11-2023
Accepted: 06-12-2023

डॉ. रामायण सिंह
सहायक प्राध्यापक,
विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग
टी.एम.बी.यू., भागलपुर, बिहार
भारत

Corresponding Author:
डॉ. रामायण सिंह
सहायक प्राध्यापक,
विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग
टी.एम.बी.यू., भागलपुर, बिहार
भारत

कालिदासीय काव्यों में पर्यावरण-विमर्श

डॉ. रामायण सिंह

DOI: https://doi.org/10.33545/27068919.2024.v6.i1a.1162

सारांश

पर्यावरण (परि+आङ्+√वृञ्+ल्युट्) वह परिवर्त है, जो प्राणिजगत् को चतुर्दिक् आच्छादन किए हुए है। इस परिवर्त के अंतर्गत सभी सजीव एवं निर्जीव घटक सम्मिलित हैं, जो मानवीय विकास को प्रभावित करते हैं। किसी कवि ने कहा भी है —

भूमिर्जलं नभो वायुरन्तरिक्षं पशुस्तृणम्।
साम्यं स्वस्थत्वमेतेषां पर्यावरणसंज्ञकम्॥

अर्थात् भूमि, जल, नभ, वायु, अन्तरिक्ष, पशु-पक्षी एवं वन्य-तृण की संतुलित के साथ-साथ स्वस्थ अवस्था की अभिधा को पर्यावरण कहते हैं।

कूटशब्द: प्रकृति, पर्यावरण, काव्य, भूमि, जल, वृक्ष, वायु, घटक, उपादान

प्रस्तावना

विश्वविख्यात पर्यावरणशास्त्री सोरोकिन ने पर्यावरण को परिभाषित करते हुए कहा है कि पर्यावरण का तात्पर्य ऐसी दशाओं और घटनाओं से है, जिनका अस्तित्व मानवीय कार्यों से स्वतंत्र है, जो मानव-निर्मित नहीं हैं एवं बिना मानव के अस्तित्व और कार्यों से प्रभावित हुए स्वतः परिवर्तित होती रहती हैं।[1]

पर्यावरण सजीव एवं निर्जीव घटकों का समुच्चय है। जहाँ सजीव घटक के रूप में जीव-जन्तु, हरे पौधे, मनुष्य — जैसे विविध उपघटक विद्यमान हैं, वहीं निर्जीव घटक के रूप में पृथ्वी, जल, पावक (ऊर्जा, तेज) वायु एवम् आकाश — जैसे पञ्च तत्त्वों के रूप में उपघटकों की अवस्थिति है। ये सभी सजीव एवं निर्जीव घटक सह-अस्तित्व एवं पारस्परिक अन्तःसम्बन्धों के आधार पर ही भूमण्डलीय पर्यावरण का निर्माण करते हैं।

जब इन घटकों में असन्तुलन का संकट उत्पन्न होने लगता है, तब किसी विशेष घटक में होनेवाला विकासात्मक परिवर्तन अन्य घटकों को भी परिव्यास कर देता है। मनुष्य रूपी सजीव घटक का निसर्ग के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पञ्चमहाभूतों (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) से निर्मित इस मानव-शरीर के पञ्चावयवों में से किसी एक के भी असन्तुलित अथवा प्रदूषित होने पर सम्पूर्ण मानव-जाति का ही अस्तित्व सन्देह की परिधि में आ जाता है।

प्रकृति में सभी घटकों का सन्निवेश सुदृढ़रूपेण व्यवस्थित एवं नियन्त्रित होता है। सभी प्रकार से सन्तुलित पर्यावरण ही इस धरा-धरित्री पर सुचारु रूप से जीवन-यात्रा को सञ्चालित करने में महती भूमिका आ निर्वहण करता है।

विषयावतरण

पर्यावरण की उपर्युक्त उपयोगिता को ही ध्यान में रखकर संस्कृत काव्यकारों ने स्वकीय महाकाव्य, खण्डकाव्य, कथाकाव्य, आख्यायिकाकाव्य, चम्पूकाव्य, नाट्यकाव्य, — जैसे काव्य के विविध विधाओं में पर्यावरण-विमर्श को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। महाकाव्य के लक्षण में ही कहा गया है कि इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, शिकार, पर्वत, ऋतु, वन एवं समुद्र जैसे उपादानों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिए, जो पर्यावरण के विभिन्न उपादान हैं —

सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः॥[2]

विषयवस्तु

महाकवि कालिदास को संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ एवं महान् कवि होने के साथ-साथ सर्वश्रेष्ठ नाटककार होने का भी गौरव प्राप्त है। इन्होंने गीतिकाव्य के रूप में ऋतुसंहार तथा मेघदूत, महाकाव्य के रूप में कुमारसम्भव तथा रघुवंश एवं नाट्यग्रन्थ के रूप में नाटकत्रय — मालविकाग्निमित्र-विक्रमोर्वशीय-अभिज्ञानशाकुन्तल की रचना की। इनकी सभी रचनाओं में विभिन्न रूपों में प्रकृति का चित्रण दृष्टिगत होता है, जिससे ज्ञात होता है कि कवि-हृदय में प्रकृति के प्रति असीम हार्दिक प्रेम था। अपनी कृतियों में कहीं पर कवीश्वर कालिदास प्रकृति को आलम्बन के रूप में, कहीं पर उद्दीपन के रूप में, कहीं पर आलङ्कारिक रूप में तो कहीं पर प्रकृति का मानवीकरण के रूप जैसे चित्रों में चित्रित करते हैं।

ऋतुसंहार: छह सर्गों में निबद्ध ऋतुसंहार छहों ऋतुओं का शृङ्गारमय वर्णन करनेवाला महाकवि की प्रथम रचना के रूप में समादृत है। यह कृति सर्वात्मना प्रकृति को ही समर्पित है। ऋतुसंहार का विशिष्ट महत्त्व इसलिए भी है कि यह संस्कृत भाषा में ऋतुओं के सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन करनेवाली एकमात्र रचना है। इस काव्य का प्रारम्भ ग्रीष्म की प्रचण्डता से होता है —

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः
सदावगाहक्षतवारिसञ्चयः।
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो
निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये॥[3]

अर्थात् हे प्रिये ! यह ग्रीष्म ऋतु आ गई। सूर्य बहुत तप रहा है। चन्द्रमा की सभी लोग अभिलाषा करते हैं। निरन्तर अवगाहन से नदियों तथा सरोवरों का जल कम हो गया है। सन्ध्या बड़ी मनोरम हो रही है और कामदेव का वेग शान्त हो गया है।

इस काव्य में प्रायः प्रकृति का चित्रण उद्दीपन-रूप से ही हुआ है, जैसा कि शरदर्तु के वर्णनक्रम में कवि कहता है —

चञ्चन्मनोज्ञशफरीरसनाकलापाः
पर्यन्तसंस्थितसिताण्डजपंक्तिहाराः।
नद्यो विशालपुलिनान्तनितम्बबिम्बा
मन्दं प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाद्य॥[4]

अर्थात् इस ऋतु में नदियाँ उसी प्रकार शनैः शनैः बह रही हैं जैसे करधनी और माला पहने हुए बड़े-बड़े नितम्बों वाली कामिनी जा रही हो, उछलती हुई शफरी मछलियाँ उन नदियों की करधनी हैं, तट पर बैठी हुई सफ़ेद पक्षियों की पंक्तियाँ मालाएँ हैं तथा ऊँचे-ऊँचे रेत भरे टीले उनके नितम्ब हैं।

प्रकृति का आलम्बनरूप वर्णन ग्रीष्मर्तु के वर्णनक्रम में हम पाते हैं —

विशुष्ककण्ठोद्भूतसीकराम्भसो
गभस्तिभिर्भानुमतोऽनुतापिताः।
प्रवृद्धतृष्णोपहता जलार्थिनो
न दन्तिनः केसरिणोऽपि विभ्यति॥[5]

इस काव्य का अन्त वसन्त के मादक सौन्दर्य के चित्रण से हुआ है। वसन्त के आगमन पर सभी वस्तुएँ मनोरम हो जाते हैं —

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखा प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः
सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते॥[6]

शिशिर ऋतु में धान और ईख के खेत अपनी फसलों से मनोहर लगते हैं, जिनमें कहीं-कहीं सारसों की मधुर ध्वनि भी सुनाई पड़ जाती है, ऐसी स्त्रियों की प्यारी शिशिर ऋतु काम को बहुत बढ़ाती हुई आ गई है —

प्ररूढशालीक्षुचयावृतक्षितिं
क्वचित्स्थितक्रौञ्चनिनादराजितम्।
प्रकामकामं प्रमदाजनप्रियं
वरोरु कालं शिशिराह्वयं शृणु॥[7]

इसके अतिरिक्त ' ऋतुसंहार' में हम विभिन्न प्रकार के पक्षी, यथा — चातक[8], कादम्ब[9], कारण्डव[10], मोर[11], विभिन्न प्रकार के पुष्प, यथा — केसर-केतकी-कदम्ब[12] पाते हैं, जिनसे प्रकृति के प्रति कवि का अगाध स्नेह प्रकटित होता है।

मेघदूत: महाकवि कालिदास द्वारा रचित मेघदूत गीतिकाव्य का प्रथम महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में समादृत है। यह पूर्वमेघ तथा उत्तरमेघ के रूप में विभक्त है। पूर्वमेघ में अपने कार्यप्रमादवशात् एक वर्ष के लिए शापग्रस्त रामगिरिस्थ यक्ष द्वारा अलकापुरीनगरी में जाने के मार्ग का वर्णन मेघ से है, जहाँ उसकी प्रियतमा यक्षिणी रहती है। इस क्रम में यक्ष आम्रकूट पर्वत[13], रेवा (नर्मदा नदी)[14], निर्विन्ध्या नदी[15], नीच गिरि[16], शिप्रा नदी[17], कैलास-मानसरोवर[18], जैसे प्राकृतिक उपादानों का महाकवि के द्वारा मनोहारित्व का वर्णन किया गया है। उत्तरमेघ में यक्ष द्वारा अलकापुरी नगरी तथा यक्षिणी का वर्णनोपर्यंत अपने सन्देश को मेघ से सम्प्रेषित करता है।

' मेघदूत' जैसा कि अभिधान से ही स्पष्ट है कि यह एक प्रकार का प्रकृतिकाव्य ही है। इस काव्य के अवलोकन मात्र से स्पष्ट होता है कि इसका प्रत्येक शब्द प्राकृतिक रमणीयता से ओतप्रोत है। इसमें प्रकृति की सुन्दर से सुन्दर छटा का चित्रण है। मेघ-यात्रा-क्रम में यक्ष कहता है कि वायु तुम्हारे सहायक होकर तुम्हें अग्रेसर कर रहा है, प्रसन्नचित्त चातक तुम्हारे बायीं ओर मधुर-मधुर ध्वनि कर रहा है। गर्भाधान का समय जानकर आकाश में पंक्तिबद्ध होकर उड़ती हुई बलाकाएँ भी निश्चय ही तुम्हारे पार आयेंगी —

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः॥[19]

प्रकृति स्वयं ही आलम्बन विभाव के रूप में स्थित है, जहाँ यक्ष मेघ से कहता है कि हे भाई ! जल की बूँदें बरसाते हुए तुम्हारे जाने का जो मार्ग है, उस पर कहीं तो भौंरे अधखिले केसरों वाले हरे-पीले कदम्बों को देखते हुए, कहीं हिरण कछारों भुँइ-केलियों के पहले फुटाव की कलियों को ढूँढते हुए और कहीं हाथी जंगलों में धरती की उठती हुई उग्र गन्ध को सूँघते हुए मार्ग की सूचना देते मिलेंगे —

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्द्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।
दग्धारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्॥[20]

प्रकृति का उद्दीपन विभाव के रूप में चित्रण हम वहाँ पाते हैं, जहाँ यक्ष प्रकृति के विविध रूपों में अपनी प्रिया के विभिन्न अङ्गों की अनुभूति करता है — वह बिम्बफल जैसे ओष्ठोंवाली, भयभीत हरिणी की तरह चंचल नेत्रोंवाली, चक्रवाकी की तरह एकाकी तथा पाले से भारी हुई कमलिनी की तरह मुरझाई हुई है (पक्वबिम्बाधरोष्ठी, चकितहरिणीप्रेक्षणा, चक्रवाकीमिवैकाम्, शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्)।[21]

मानवीय भावना से युक्त होने का आरोपण करते हुए कवि यक्ष के द्वारा मेघ से कहलवाता है कि अब तुम रामगिरि से विदाई लो। यह तुम्हारे विश्लेष में गरम आँसू बहाकर अपना स्नेह की अभिव्यक्ति करता है —

काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतोबाष्पमुष्णम्॥[22]

मेघ यात्रा के क्रम में थकने पर पर्वतों पर विश्राम भी करता है और प्यास लाग्ने पर नदियों का जल भी पीता है—

खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य।[23]

अलकापुरी की प्राकृतिक सुषमा के वर्णनक्रम में कवि कहता है कि वहाँ की वधूएँ छहों ऋतुओं के पुष्पों से शृङ्गार करती हैं। उनके हाथों में शरद् ऋतु का लीलाकमल विद्यमान रहता है, केशों में हेमन्त में उपलब्ध ताजे कुन्द-पुष्पों का ग्रन्थन करती हैं, शिशिर ऋतु में उपलब्ध होनेवाले लोध्रपुष्पों के पीले पराग को मुख पर लगाती हैं, वसन्त में खिलने वाले कुरबक के नए पुष्पों से वे जुड़े सजाती हैं, ग्रीष्मकालीन शिरीष के पुष्पों को वे कान पर रखती हैं और वर्षाकालीन कदम्बपुष्पों से वे अपनी माँग भरती हैं —

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्॥[24]

कुमारसम्भव: सत्रह सर्गों में उपनिबद्ध कुमारसम्भव में शिव-पार्वती विवाह, उनसे कार्तिकेय (स्कन्दकुमार) का जन्म तथा उनके द्वारा तारकासुर-वध की कथा है। इस महाकाव्य में कवि ने सर्वत्र प्रकृति के विभिन्न उपादानों को विविध रूपों में वर्णित किया है। यहाँ काव्य का प्रारम्भ ही देवरूप नगाधिराज हिमालय की प्रस्तुति है, जो पूर्व और पश्चिम के समुद्रों में प्रविष्ट होकर पृथ्वी के मानदण्ड की तरह विद्यमान हैं।[25]

सप्तम सर्ग में किसी प्रसाधिका ने धूप जलाकर उसकी गर्मी से पार्वती के बाल सुखाए, किसी ने केशपाश में फूल गूँथ दिए। किसी ने दूर्वा के साथ पीले महुए की माला से उसके जुड़े को सुन्दरता से सजा दिया। वधू पार्वती ने अपने पुरोहित के कहने पर खीलों की सुगन्ध से भरे हुए उस अग्नि के धुएँ को अपनी अंजलि में भरकर मुख के समीप ले जाकर सूंघा —

धूपोष्मणा त्याजितमार्द्रभावं केशान्तमन्तःकुसुमं तदीयम्।
पर्याक्षिपत्काचिदुदारबन्धं दूर्वावता पाण्डुमधूकनाम्ना॥
सा लाजधूमाञ्जलिमिष्टगन्धं गुरूपदेशाद्ग्रदनं निनाय।[26]

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि चतुर्दिक् वातावरण को शुद्ध रखने के लिए हवन, यज्ञ तथा चन्दन के उपयोग किए जाते थे। वायु की शुद्धता पर विशेषकर इससे बल मिलता था।

आलङ्कारिक आलम्बनविभाव के रूप में प्रकृति का मनोहारी चित्रण दर्शनीय है —

पर्याप्तपुष्पस्तबकस्त्वाभ्यः
स्फुरत्प्रवालौष्ठमनोहराभ्यः।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापु-
र्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि॥[27]

अर्थात् पुष्पों के स्तबक जिनके स्तनों के समान थे और जो नवांकुर रूपी अधरों से मनोहर हो उठी थी — ऐसी लताओं रूपी वधुओं ने भी अपने विनम्र भुज-बन्धनों को वृक्षों के गले में डाल दिया।

प्रकृति का मानवीकरण अत्यन्त ही रमणीय होता है। कवि के अनुसार ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो चन्द्रमा अपनी किरणरूपी अंगुलियों से रजनी के अन्धकार-रूपी केशपाश को एक ओर समेटकर उसके मुख का चुम्बन ले रहा हो और रजनी आनन्दित होकर अपने कमलरूपी नेत्रों को मूँदकर बैठी हुई हो —

अङ्गुलीभिरिव केशसञ्चयं सन्निगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशि॥[28]

शैलाधिराजकन्या के वधूवेश में कवि ने शारदीया वसुधा के पावन दर्शन किए हैं। मंगल स्नान करने से पार्वती का शरीर अत्यन्त निर्मल हो गया। उन्होंने विवाह के वस्त्र धारण कर लिए। उस समय उनकी शोभा ऐसी हो गयी, जैसे मेघ-जल से धुली हुई हो और काँस के फूलों से भरी हुई वसुधा विराज रही हो।[29]

रघुवंश: उन्नीस सर्गों में समन्वित रघुवंश महाकाव्य में दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम जैसे विभिन्न तीस सूर्यवंशी राजाओं का वर्णन है। इस महाकाव्य में सभी जगह हमें पर्यावरण के विविध उपादानों के दर्शन होते हैं। प्रकृति के आलम्बन विभाव के रूप में चित्रण निम्न श्लोक में द्रष्टव्य है —

स पल्लवोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन्॥[30]

अर्थात् राजा दिलीप, छोटे-छोटे तालाबों से निकले हुए वनैले सूअरों के झुण्डों से युक्त, अपने आश्रयभूत वृक्षों की ओर उन्मुख मयूरों से सुशोभित तथा बैठे हुए हरिणों के झुण्डों से सेवित हरी-भरी घासोन के मैदानों से चतुर्दिक् श्याम ही श्याम दिखाई पड़ने वाले वन को देखते हुए चले।

आलङ्कारिक आलम्बन रूप में प्रकृति का वर्णन अत्यन्त ही रमणीय हो गया है, जब कवि गङ्गा-यमुना-सङ्गम का वर्णन चार पद्यों में उपमा अलङ्कार के माध्यम से करता है —

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुबिद्धा।
अन्यत्रमाला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव॥
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः॥[31]

अर्थात् (राम सीता से कहते हैं) हे अनिद्य सौन्दर्यवाली सीते ! यमुना की लहरों से अत्यन्त पृथक्, अपनी धारा से युक्त गङ्गा, जो कहीं पर कान्ति बिखेरनेवाली इन्द्रनीलमणियों से जड़ी हुई मोती की छड़ी के समान दिखाई पड़ती है, तो कहीं पर बीच-बीच में नीले कमलों से युक्त श्वेत कमलों की माला के समान है।

रघुवंश महाकाव्य में विविध स्थलों पर हम जड़ प्रकृति को मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत पाते हैं। यथा — कवि की दृष्टि में समुद्र स्त्रियों में अन्यों की अपेक्षा असाधारण भोग करनेवाला है। अपना मुख अर्पित करने में स्वभाव से ही धृष्ट नदियों का एक ओर तो यह अधर-पान करता है तो दूसरी ओर स्वयं अपने तरंग-रूपी अधरों का दान करने में चतुर होने से उन्हें अधर-पान कराता भी है —

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरङ्गाधरदानदक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः॥[32]

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के निकट परित्यक्ता सीता के कुररी के समान क्रन्दन को सुनकर वन के मोरों ने नाचना बन्द कर दिया, वृक्ष फूलों के आँसू गिराने लगे, हरिणियों ने मुँह में भरी हुई घास का कौर गिरा दिया। सीता के दुःख से दुःखी होकर सारा वन क्रन्दन करने लगा —

नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा
दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव-
मत्यन्तमासीद् रुदितं वनेऽपि॥[33]

अप्रस्तुत प्राकृतिक चित्र द्वारा प्रस्तुत वस्तु के मनोहारी वर्णन के क्रम में कवि
कहता है कि राजकुमारी इन्दुमती को दूसरे राजा के आगे द्वारपालिका सुनन्दा उसी प्रकार पहुँचा देती है, जैसे वायु के छकोरों से उत्पन्न तरंग-पंक्ति मानसरोवर की राजहंसिनी को एक कमल के समीप से दूसरे कमल के समीप पहुँचा देती है —

तां सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता राजान्तरं राजसुतां निनाय।
समीरणोत्थेव तरङ्गलेखा पद्मान्तर
मानसराजहंसीम्॥[34]

यहाँ पर इन्दुमती की राजहंसिनी के बिम्ब के द्वारा सुन्दर चित्रण दर्शनीय है। मानसरोवर, राजहंसिनी, कमल, तरंगलेखा और समीर के माध्यम से कैसा मनमोहक बिम्ब का प्रस्तुतीकरण है। राजा रघु के गुणों को देखकर प्रजा उनके पिता को उसी प्रकार विस्मृत हो गई, जिस प्रकार आम्र के सुन्दर फलों को देखकर लोग उसकी मंजरी को भूल जाते हैं —

मन्दोत्कण्ठाः कृतास्तेन गुणाधिकतया गुरौ।
फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजाः॥[35]

मालविकाग्निमित्र: पाँच अंकों में पर्यवसित यह एक ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें शुङ्गवंशीय राजा अग्निमित्र तथा विदर्भ-राजकुमारी मालविका का वैवाहिक आख्यान है। यहाँ पर प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है। निसर्ग का आलम्बन विभाव के रूप में ग्रीष्मर्तु का सहज वर्णन दर्शनीय है — बावड़ियों में कमल-पत्र की छाँह में हंस आँख मूंदकर विश्राम कर रहे हैं। धूप से भवन ऐसा तप गया है कि छज्जों पर कबूतर तक नहीं बैठ रहे हैं। चलते हुए रहट से उछलती हुई पानी की बूँदें पीने के लिए मोर उसके चारों ओर चक्कर काट रहे हैं। जैसे राजा अपने सभी राजसी गुणों से प्रकाशित होता है, वैसे सूर्य भी अपने सभी गुणों से चमक रहा है —

पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापद्मिनीनां
सौधान्यत्यर्थतापाद् वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि।
बिन्दुक्षेपान् पिपासुः परिसरति शिखी भ्रान्तिमद् वारियन्त्रं
सर्वैरुस्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः॥[36]

यह वर्णन कितनी सादगी और लालित्य से परिपूर्ण है। प्रथम अंक में
परिव्राजिका राजा से कहती है कि मृदङ्ग बज उठा। देखो यह मेघ गर्जन कर रहा है। इस भ्रम से मृदङ्ग के शब्द को सुनकर मयूर अपने सिर को ऊपर उठाकर देख रहे हैं और मध्यम गम्भीर स्वर से उठी हुई मायूरी नाम की मार्जना, हम लोगों के मन को मस्त बना रही है —

जीमूतस्तनितविशङ्किभिर्मयूरैरुद्गीवैरनुरसितस्य पुष्करस्य।
निर्ह्रादिन्युपहितमध्यामस्वरोत्था मायूरी मदयति मार्जना मनांसि॥[37]

मालविकाग्निमित्र के चतुर्थ अङ्क में विदूषक से राजा कहता है कि यह बड़े दुःख की बात है कि बौरे हुए आम्र पर एक साथ बैठी हुई मधुर स्वर वाली कोयल तथा

भ्रमरी को प्रचण्ड पुरवैया की हवा तथा असमय की वर्षा ने वृक्ष के कोटरों में बलात् बन्द कर दिया है —

मधुरस्वरा परभृता भ्रमरी च विबुद्धचूतसाङ्गिन्यौ।
कोटरमकालवृष्ट्या प्रबलपुरोवातया गमिते॥[38]

विक्रमोर्वशीय: पाँच अङ्कों में समन्वित यह एक प्रकार के उपरूपक के अन्तर्गत आनेवाला त्रोटक है। त्रोटक में देव तथा मनुष्य दोनों का वर्णन होता है। प्रकृत त्रोटक में राजा विक्रम (पुरूरवा) तथा दिव्य पात्र उर्वशी नामक अप्सरा की प्रणयकथा वर्णित है। प्राकृतिक हवा में मानवीय गुणों से सम्बद्ध मानकर ही राजा उसको आदिष्ट करता है कि हे वसन्त के प्रिय दक्षिण पवन ! सुगन्धि को प्राप्त करने के लिए तुम वसन्त द्वारा एकत्र किए गए लताओं के पुष्पों के पराग उड़ा ले जाओ। भला मेरी प्रिया के हस्तलिखित पत्र हरण करके तुम क्या करोगे ? तुम तो स्वयं अङ्गना से प्रेम कर चुके हो, इसी कारण जानते ही हो कि ऐसी ही मन बहलानेवाली वस्तुओं को देखकर प्रेमीजनों का जीवन बचा रहता है —

वसन्तप्रिय दक्षिणवायो !
वासार्थं हर संभृतं सुरभिणा पौष्पं रजो वीरूधां
किं कार्यं भवतो हृतेन दयितास्नेहस्वहस्तेन मे।
जानीते हि मनोविनोदनशतैरेवंविधैर्धारितम्
कामार्तं जनमङ्गनां प्रति भवानालक्षितप्रार्थना॥[39]

राक्षसों के भय से मूर्च्छित होकर जब उर्वशी पुनः चेतना प्राप्त कर रही थी, तब उसकी दशा के वर्णन में महाकवि कालिदास का प्रकृति के आलङ्कारिक (उत्प्रेक्षा) आलम्बन विभाव के रूप में चित्रण देखते ही बनता है —

आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रि-
र्नैशस्यार्चिर्हुतभुज इव च्छिन्नभूयिष्ठधूमा।
मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा
गङ्गा रोधःपतनकलुषा गच्छतीव प्रसादम्॥[40]

अर्थात् (चित्रलेखा को सम्बोधित करते हुए राजा कहता है) मूर्च्छा दूर होने पर तुम्हारी सखी ऐसी लगती है जैसे चन्द्रमा के निकल जाने पर अन्धकार से मुक्त हुई रात्रि हो, रात्रि के समय धुएँ की रेखा से विमुक्त अग्नि की लपट हो अथवा गङ्गा की वह धारा हो, जो कगारों के गिर जाने से मलिन होकर पुनः स्वच्छ हो गई हो।
चतुर्थ अङ्क में राजा प्रकृति के विभिन्न उपादानों से उर्वशी का पता पूछते हैं। लेकिन वह तो लता के रूप में परिणत हो चुकी है। राजा विक्षिप्तावस्था में बादल को राक्षस समझता है, इन्द्रधनुष को राक्षस का धनुष, घोर वृष्टि को बाण-वर्षा तथा बिजली को उर्वशी मानकर कल्पना करता है कि वह उर्वशी का अपहरण कर रहा है। किन्तु शीघ्र ही उसका भ्रम दूर होता है कि ये सब तो प्राकृतिक उपादान हैं —

नवजलधरः सन्नद्धोयं न दृप्तनिशाचरः
सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न नाम शरासनम्।
अयमपि पटुर्धारासारो न बाणपरम्परा
कनकनिकषस्निग्धा विद्युत् प्रिया मम नोर्वशी॥[41]

अभिज्ञानशाकुन्तल: विश्वप्रसिद्ध एवं विश्ववंद्य सात अङ्कों में समुदित इस नाटक में हस्तिनापुर नरेश दुष्यन्त तथा महर्षि कण्व की पालिता पुत्री शकुन्तला के प्रेम, वियोग और पुनर्मिलन का वर्णन है। पञ्चम और षष्ठ अङ्कों को छोड़कर सभी अङ्क प्राकृतिक वातावरण से संपृक्त हैं। इस नाटक में प्रकृति के विविध उपादानों का चित्रण अत्यन्त ही मनोहारी रूप से किया गया है। आलम्बन-विभाव के रूप में प्रकृति का चित्रण कितना स्वाभाविक है। जब राजा सारथी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि बार-बार पीछे की ओर मुड़कर इस हमारे रथ को अपलक नेत्रों से देखता हुआ सुन्दर दिखलाई पड़ने वाला मृग, बाण लगने के भय से अपने शरीर के पश्च आधे भाग को सिकोड़कर अगले आधे भाग से मिलाता हुआ किस प्रकार से दौड़ रहा है। दौड़ने के श्रम से इसके खुले हुए मुँह से आधी चबाई कुशा मार्ग में गिरती चली जा रही है। देखो, यह इतनी लम्बी-लम्बी छलाँगें भर रहा है कि यह अधिकतर आकाश में ही चल रहा है, पृथ्वी पर बहुत थोड़ा चल रहा है —

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति॥[42]

प्रकृति को उपमान के रूप में (अप्रस्तुतविधानात्मकरूप) कवि-चित्रण द्रष्टव्य हो जाता है, जब दुष्यन्त शकुन्तला के सौन्दर्य को निसर्ग के विविध उपादानों से तुलित करते हुए कहते हैं कि इसके ओष्ठ लता के नूतन किसलय-सदृश लाल हैं, इसकी दोनों भुजाएँ लता की कोमल शाखाओं के समान प्रतीत होती हैं और इसके सभी अंगों में खिला हुआ नवयौवन लता के लुभावने पुष्प की भाँति दिखाई पड़ रहा

है। इसका मनोहारी रूप वैसा ही पवित्र है जैसे बिना सूँघा हुआ पुष्प, नखों से अछूता पत्ता, बिना बिंधा हुआ रत्न, बिना चखा हुआ नूतन मधु और बिना भोगा हुआ पुण्यों एवं सत्कर्मों का फल। किन्तु मैं यह नहीं जानता कि इस पापरहित रूप को भोगने के लिए विधाता ने किसे बनाया है —

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुमिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्॥
अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघम्
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः॥[43]

प्रकृति का उद्दीपन विभाव के रूप में चित्रण को हम देखते हैं जब षष्ठ अङ्क में कञ्चुकी कहता है कि आम्र-वृक्षों की मञ्जरी देर से निकली हुई होने पर भी अपना पराग नहीं दिखाती। यद्यपि कुरबक तैयार खड़ा है, तथापि वह कली की दशा में है। शिशिरर्तु के चले जाने पर भी कोकिलों के कण्ठों में कूजन रुक गया है। मुझे लगता है कि कामदेव ने भी चकित होकर तूणीर से आधा खींचा हुआ बाण रोक लिया है —

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
सन्नद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूर्णार्धकृष्टं शरम्॥[44]

अभिज्ञानशाकुन्तल में प्रकृति और मानव की पारस्परिक संवेदनशीलता का चरमोत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। तपोवन की प्रकृति और शकुन्तला में दोनों का परस्पर प्रगाढ़ प्रेम है। ये दोनों सखियाँ नहीं होकर सगी बहनें हैं, जैसा कि शकुन्तला कहती है कि मैं केवल पिता कण्व की आज्ञा से ही इन वृक्षों का सिंचन नहीं करती अपितु इनके प्रति मेरा सोदर स्नेह है। महर्षि कण्व भी शकुन्तला की विदाई के समय वृक्षों को देखकर कहते हैं कि जो पहले जल पिलाए बिना स्वयं नहीं पीती थी, जो आभूषणों को पहनने की प्रेमी होने पर भी तुम्हारे प्रति अतीव स्नेह होने के कारण तुम्हारे कोमल पल्लवों में हाथ भी लगाती थी, जो तुम्हारी नूतन कलियों को देखकर उत्सव मनाया करती थी, वही शकुन्तला अपने पतिगृह जा रही है। तुम सब जाने की अनुमति दे दो —

ण केवलं तादणिओओ एव्व। अत्थि मे सोदरसणेहो वि एदेसु।[45]
पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥[46]

शकुन्तला की पतिगृहप्रस्थानवेला में कोई वृक्ष चन्द्रसदृश श्वेत मांगलिक रेशमी वस्त्र देता है, कोई वृक्ष पैरों में लगाने योग्य महावर देता है तो अन्य वृक्षों से वन-देवी की कलाई तक निकले हुए अपने कोमल पल्लवों के समान हाथों से बहुत से आभूषण भेंट किए जाते हैं। इतना ही नहीं शकुन्तला-विश्लेष के कारण हिरनियों ने वृक्षग्रास उगल दिए हैं, मोरों ने अपना नृत्य बन्द कर दिया है और ये लताएँ मानो आँसुओं के समान अपने पीले-पीले पत्ते गिरा रही हैं। प्रकृति के साथ इस प्रकार का भावनात्मक सम्बन्ध विश्व साहित्य में अन्यत्र मिलना असम्भव है —

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभोगोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः॥
उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्त्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः॥[47]

उपसंहार

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि कालिदासीय काव्यों में प्रकृति कहीं आलम्बन विभाव के रूप में, कहीं उद्दीपन विभाव के रूप में, कहीं आलङ्कारिक विभाव के रूप में तो कहीं संवेदनशील मानवीय भावना का अभिव्यञ्जक — जैसे विविध रूपों में चित्रित है। पुष्प, वृक्ष, नदी, फल, वन्य जीव — ये सभी कवि के सगे-सम्बन्धी जैसे प्रतीत हो रहे हैं, जो पर्यावरण किं वा प्रकृति के विभिन्न उपादान हैं। सम्प्रति जब सम्पूर्ण भूमण्डल पर्यावरण-प्रदूषण से आक्रान्त हो गया है, तब कालिदासीय काव्यों का विमर्श और भी आवश्यक हो जाता है। प्रकृति-विश्लेषण के माध्यम से कवि ने पर्यावरण के विभिन्न अवयवों को यत्र तत्र सर्वत्र अपनी रचनाओं में संरक्षणार्थ संकेत किया है। अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम पद्य में ही कवि ने भगवान् शङ्कर के जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, वायु, होता, सूर्य और चन्द्र इन आठ रूपों में दर्शन किया है —

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥[48]

सन्दर्भसूची

1. Sarakin, Contemporary Sociological Theories, Page 10
2. साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद - 322
3. ऋतुसंहार, 1.01
4. तत्रैव; 3.03
5. तत्रैव; 1.15
6. तत्रैव; 6.02
7. तत्रैव; 5.01
8. तत्रैव; 2.03
9. तत्रैव; 3.08
10. तत्रैव; 3.08
11. तत्रैव; 2.14
12. तत्रैव; 2.21
13. मेघदूत 1.17
14. तत्रैव; 1.19
15. तत्रैव; 1.29
16. तत्रैव; 1.26
17. तत्रैव; 1.62
18. तत्रैव; 1.66
19. तत्रैव; 1.09
20. तत्रैव; 1.21
21. तत्रैव; 2.21-22
22. तत्रैव; 1.12
23. तत्रैव; 1.13
24. तत्रैव; 2.02
25. कुमारसम्भव 1.1
26. तत्रैव; 7.14, 81
27. तत्रैव; 3.39
28. तत्रैव; 8.63
29. सा मंगलस्नानविशुद्धगात्री गृहीतपत्युद्गमनीयवस्त्रा।
30. निर्वृतपर्जन्यजलाभिषेका प्रफुल्लाकाशा वसुधेव रेजे॥ कुमारसम्भव 7.11
31. रघुवंश 2.17
32. तत्रैव; 13.54-57
33. तत्रैव; 13.09
34. तत्रैव; 14.69
35. तत्रैव; 6.26
36. तत्रैव; 4.09
37. मालविकाग्निमित्र 2.12
38. तत्रैव; 1.21
39. तत्रैव; 4.02
40. विक्रमोर्वशीय 2.19
41. तत्रैव; 1.09
42. तत्रैव; 4.01
43. अभिज्ञानशाकुन्तल 1.07
44. तत्रैव; 1.19, 2.11
45. तत्रैव; 6.04
46. तत्रैव; पृष्ठ 61
47. तत्रैव; 4.09
48. तत्रैव; 4.4, 11
49. तत्रैव; 1.1